शोध मंथन Vol. XVI No.2 Apr.- June. 2025 ISSN: (P) 0976-5255 (e) 2454-339X, Impact Factor 8.877 (SJIF)
https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i02.25

हिन्दी नवजागरण एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण की दृष्टि से भारतेन्दु युगीन साहित्य

प्राप्तिः 10.03.2025
स्वीकृतः 25.04.2025

25

डॉ. सुमन सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी विभाग)
राजकीय महिला महाविद्यालय, खरखौदा, मेरठ
ईमेलः sumansinghverma1978@gmail.com

सारांश

भारतेन्दुयुग अथवा पुनर्जागरण– काल का उदय हिन्दी कविता के लिए एक नवीन जागरण के रूप में परिलक्षित हुआ। हिन्दी साहित्यकारों ने सन् 1850 से लेकर 1900 ई0 तक के काल को भारतेन्दु युग की संज्ञा प्रदान की है। इस युग में जनचेतना पुनर्जागरण की भावना से अनुप्राणित थी, फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में परस्पर एक गहरा अन्तः सम्बन्ध विद्यमान था। अतः कवि–कर्तव्य पर इसका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। राष्ट्रीय भावना का उदय, मातृभूमि–प्रेम, मद्य–निषेध, बाल–विवाह निषेध, मुद्रण यन्त्रों का विस्तार और समाचार पत्रों के प्रकाशन ने भी जन–जागरण में योगदान दिया।

मुख्य बिन्दु

भारतेन्दु युग, नवजागरण, सांस्कृतिक, पुनर्जागरण, राष्ट्रीय एकता, जनवादी विचारधारा, मातृभूमि प्रेम, लोकचेतना

प्रस्तावना

भारतेन्दु युग रीतिकाल की क्रमशः निस्पन्द होती हुयी गीत धारा में प्रेरणा का नवप्रवाह उत्पन्न करने वाले नवयुग के वैतालिक के रूप में भारतेन्दु का आर्विभाव हिन्दी साहित्य की अविस्मरणीय घटना है। पुरातन और अधुनातन के सन्धिः स्थल के इस पुरौधा ने मृतप्राय गीतधारा को नवजीवन ही नही दिया वरन् विषय व भावना क्षेत्र का नूतन निर्माण कर रूप शिल्प की दृष्टि से भी उसे सर्वथा नवीन कलेवर प्रदान किया। यहाँ आकर गीतिकाव्य ने विषय, भाषा रूप और शिल्प सभी क्षेत्रों में एक नया आकार ग्रहण किया। देश की तत्कालीन राष्ट्रीय, आर्थिक, सामाजिक, साहित्यिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के आर्वतन–विर्वतन चक्र में उलझकर हिन्दी गीत परम्परा अप्रत्याशित रूप से परिवर्तित हो गयी। सक्रान्तिकाल के जिस साहित्यकार ने इस रूप परिवर्तन का कार्य किया, वह थे नव चेतना के श्लाका–पुरूष भारतेन्दु हरिशचन्द्र।

आधुनिक काल की लोकधर्मी चेतना का विश्लेषण काफी रोचक है। क्योंकि भक्तिकाल के बाद यह धारा थोड़ी अवरूद्ध सी हो गयी थी। यद्यपि कुछ रीतिमुक्त कवियों के स्वच्छन्दतावाद व प्रेम के माध्यम से यह अभी भी आगे बढ़ ही रही थी कि आधुनिक काल के नवजागरण के प्रभाव से

भक्तिकाल की आध्यत्मिकता और रीतिकाल की शास्त्रबद्धता को झटका लगा और लोकमानस पुनः केन्द्र में आ गया। डा० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही कहा है– ''पुर्नजागरण ने आध्यात्म को लोक से जोड़ा, फिर लोक को राष्ट्रीयता से''[1]। आधुनिक काल से पूर्व का लोक अधिकाशतः संस्कार व विश्वास पर आधारित हुआ करता था, जहाँ वह 'व्यवस्था' के बाहरी ढ़ाँचे से पहचाना जाता था। उसकी पहचान के लिए किसी न किसी पारम्परिक निष्ठा या गुण की जरूरत महसूस होती थी। आधुनिक काल में पहली बार 'लोक'का प्रत्यक्षगत गुण स्पष्ट हुआ, जिससे लोकजीवन के वैविध्य का पता चलता है। अब लोक यहाँ सामान्य आदमी के जीवन से जुड़ी 'रोजर्मरा' की गतिविधि के रूप में आता है, जबकि पहले रूढ़िगत गतिविधि से 'लोक' की पहचान संभव होती थी। क्रम का यह उलट जाना, मनुष्य का सीधी पाँव खड़ा हो जाना ही है। इसे भारतेन्दु युग से अब तक देखा जा सकता है।[2]

इन्हीं परस्पर विरोधी परिस्थितियों के बीच बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का उदय हुआ। हम कह सकते हैं कि रीतिकाल की सूखती जमीन पर जब नवजागरण का पहला पानी बरसा तो वह भरभरा कर उठ गयी, जिस पर उसके बाद के कवियों ने हल जोतने का कार्य किया। भारतेन्दु इस हल को पकड़ने वाले हिन्दी के पहले कवि रहे हैं। जिनमें एक विद्रोही चेतना ने जन्म लिया। ''भारतेन्दु सक्रान्तिकाल के कवि रत्न हैं। युग की आवश्यकताओं और समस्याओं के अनुरूप उन्होंने कविता का पुनः संस्कार किया, उनमें हमें प्राचीन और नवीन दोनों का मोह दृष्टिगत होता है। प्राचीन गेय पदों की सी रचना प्रचुर परिमाण में करने वाले भारतेन्दु ने गीति धारा को नये क्षितिज दिए, नए स्वर दिये और वर्ण्य व्याप्ति की दृष्टि से इतना विस्तृत बना दिया कि उसका पूर्व ही धूमिल पड़ गया। राधा–कृष्ण की भक्ति से सम्बद्ध परम्परगत पदों के रचयिता की दृष्टि से एक ओर जहाँ भारतेन्दु, सूर, मीरा, आदि भक्त कवियों की श्रेणी के ही माणिक्य प्रतीत होते हैं, वही दूसरी ओर राष्ट्रीय जागृति के अग्रदूत भी, जिन्होंने सर्वप्रथम राष्ट्रीय प्रगीतों की रचना कर जनता के मन को मथित किया।''[3] पहली बार भारतेन्दु के गीतों में लोकहित, समाजसुधार, स्वतन्त्रता आदि विषयों पर विचार मिलता है। वीरगाथा काल की स्थानीय और जातीय देशभक्ति के स्थान पर सम्पूर्ण मातृभमि के लिए व्यापक देशभक्ति का स्वर पहली बार इस युग के गीतों में मिला।

इस युग में जहाँ एक ओर भारतीय नेताओं और रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द जैसे समाज सुधारकों ने विदेशियों के शोषण से उत्पन्न भूख, बेकारी, दरिद्रता को मिटाने के लिए बीड़ा उठाया वही दूसरी ओर रीतिकालीन अतिशय श्रृगंरिक चित्रण, नायिका भेद, नखशिख वर्णन, अलंकारों के भद्दे प्रदर्शन आदि जो कि आज के जन–जीवन के लिए असह्य हो रहा था, जिसने साहित्य को जन–जीवन से दूर कर राजमहलों की परिधि में सीमित कर दिया था, उसे पुनः जनता के हृदयों तक जोड़ने का प्रयास भारतेन्दुयुगीन कवियों ने किया भारतेन्दु युग हिन्दी गद्य के विकास के लिए भी उल्लेखनीय है। भारतेन्दु जी ने भाषा और विषय दोनों ही दुष्टि से हिन्दी कविता को नवीन मार्ग प्रदर्शित किया। इस विविध प्रयत्नों ने भारत में एक नयी क्रान्ति उत्पन्न कर दी उसको एक नया जीवन प्रदान किया और हिन्दी कविता को एक नयी साज–सज्जा के परिधान में प्रस्तुत किया, परिणामस्वरूप इसे नवजागरणकाल के नाम से विभूषित किया गया। भारतेन्दुयुगीन साहित्य पर प्रकाश डालते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है– ''भारतेन्दु का पूर्ववर्ती साहित्य संतो की कुटिया से निकलकर राजाओं और रइसों के दरबार मे पहुँच गया था। वह मनुष्य को देवता बनाने

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i02.25

के पवित्र आसन से च्युत होकर मनोविनोद का साधन बन गया था, ऐसा होना वांद्दनीय नहीं था। जिन संतो और महात्माओं ने काव्य में मनुष्य को देवता बनाने की शक्ति संचारित की थी, उनके चेलों ने उनके नाम पर सम्प्रदाय स्थापित किए, काव्य को देवता बनाने की शक्ति लुप्त हो गयी। उनकी साम्प्रदायिक, अदभुत व्याख्याएँ शुरू हो गयी और दूसरी ओर कवियों की दुनिया राजदरबारों की ओर खिंच गयी। भारतेन्दु ने कविता को इन दोनों प्रकार की अधोगतियों के पंथ से उबारा। उन्होनें एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की पवित्र मन्दाकिनी मे स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकालकर लोक जीवन के आमने–सामने खड़ा कर दिया। नाटकों में तो उन्होनें युगांतर उपस्थित कर दिया''[4]।

डॉ रामविलास शर्मा ने भी भारतेन्दुयुगीन साहित्य के जनवादी स्वरूप को स्पष्ट किया है। उनके शब्दों में भारतेन्दु युग का साहित्य ''भारतीय समाज के पुराने ढाँचे से सन्तुष्ट न रहकर उसमे सुधार भी चाहता है। वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है। भारतेन्दु स्वदेशी आन्दोलन के ही अग्रदूत न थे। वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे''[5] इस प्रकार आधुनिक भावबोध की सगंठित अभिव्यक्ति नवजागरण के माध्यम से हुयी है। प्रसिद्ध इतिहासकार विपिनचन्द्र लिखते हैं– ''ब्रिटिष साम्राज्यवाद के विस्तार और उसके साथ औपनिवेषिक संस्कृति और विचारधारा के प्रचार–प्रसार की प्रतिक्रिया में ही यह लहर उठनी शुरू हुयी थी। बाहरी संस्कृति के फैलाव से भारतीयों के लिए यह जरूरी हो गया था कि वह आत्म–निरीक्षण करे हालाँकि औवनिवेषिक संस्कृति के खिलाफ यह प्रतिक्रिया हर जगह और घर–समाज में अलग–अलग तरह की हुयी, लेकिन यह बात हर जगह शिद्दत के साथ महसूस की गयी कि सामाजिक धार्मिक जीवन में सुधार अब जरूरी हो गया है। सुधार की इस प्रक्रिया को आमतौर पर नवजागरण कहा जाता है।''[6] भारतेन्द युग मुख्यत दो सस्कृतियों की टकराहट का काल है, जिसमे ''एक ओर मध्ययुगीन दरबारी संस्कृति विद्यमान थी तो दूसरी ओर आम जनता में सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलन के लिए वातावरण भी तैयार करना था। साहित्य में,देश में बढ़ते हुए असंतोष को प्रकट करना भर ना था अपितु सदियों से चले आ रहे समाज की हड्डियों मे बसे सामंती विकारों से की मोर्चा लेना था।''[7]

जनसाहित्य के प्रति प्रखर लगाव के कारण ही इस युग के लेखक जनता के अधिकाधिक समीप पहुंचने में समर्थ हो सके हैं और युग को एक नवनिर्मित सुनिश्चित दिशा में प्रवाहमान करने के लिए सामर्थ्यं अर्जित कर सकें हैं। भारतेन्दु बाबू ने बहुत सा लोकसाहित्य रचा था और लेख लिखकर बहुतों को इस ओर प्रोत्साहित भी किया था। वैसे तो साहित्य के सभी अंगों की ओर वे सचेत थे, किन्तु जिन शब्दों में उन्होने ग्राम साहित्य अथवा लोक साहित्य की आवश्यकता को व्यक्त किया है, वे हमारे लिए आज भी एक 'मैनिफेस्टो' के रूप में काम आ सकते हैं।[8]

सन् 1879 में प्रकाशित 'कवि वचन सुधा' की एक विज्ञप्ति से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष की उन्नति के लिए प्रयोजनीय विविध उपायों में उच्च स्तरीय कविताओं के अतिरिक्त लोकगीतों की रचना पर भी ध्यान दिया गया था जिनके द्वारा नवजागृत्ति के विचार ग्राम–ग्राम तक प्रचारित किये जा सके यहाँ उन्हीं के विचार प्रस्तुत हैं–

''भारत वर्श की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आज कल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े–बड़े लेख और काव्य प्रकाशित होते हैं, किन्तु वे जन साधारण में दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी–छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश के गाँव–गाँव में साधारण लोगों में प्रकाशित की जायें। यह सब लोग जानते हैं कि जो बात साधारण लोगों में फैलेगी, उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा और यह भी विदित है कि जितना शीघ्र ग्रामगीत फैलते हैं और जितना काव्य को संगीत द्वारा सुनकर चित्त पर प्रभाव होता है उतना साधारण शिक्षा से नही होता। इससे साधारण लोगों के चित्त पर भी इन बातों का अंकुर जमाने के लिएय इस प्रकार से संगीत फैलाया जाय तो बहुत कुछ संस्कार बदल जाने की आशा है। इसी हेतु मेरी इच्छा है कि में ऐसे–ऐसे गीतों का संग्रह करूँ और उनको छोटी–छोटी पुस्तकों में मुद्रित करूँ। इस विषय में मैं, जिनकी कुछ भी रचना शक्ति है, उनसे सहायता चाहता हूँ कि वे लोग भी इस विषय पर गीत व छन्द बनाकर स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित करें या मेरे पास भेज दें, मैं उनको प्रकाशित करूँगा और सब लोग अपनी–अपनी मंडली में गाने वालों को यह पुस्तक दें। जिन लोगों का ग्रामीणों से सम्बन्ध है वे गाँव में एसी पुस्तके भेज दें. बाल विवाह से हानि, जन्मपत्री मिलाने की आशास्त्रता, बालकों की शिक्षा, अग्रेजी फैशन से शराब की आदत, भ्रूण हत्या, फूट और बैर, बहुजातित्व और बहुभक्तित्व, जन्मभूमि, इससे स्नेह और इसके सुधारने की आवश्यकता का वर्णन, नशा, अदालत, स्वदेशी हिन्दुस्तान की वस्तु हिन्दुस्तानियों को व्यवहार करना– इसकी आवश्यकता, इसके गुण, इसके न होने से हानि का वर्णन आदि विशय ग्रामगीत लिखने के निमित सूचित करें। यद्यपि यह एक–एक विषय, एक–एक नाटक, उपन्यास व काव्य आदि ग्रन्थ बनाने के योग्य है और इन पर अलग ग्रन्थ बने तो बड़ी ही उत्तम बात, पर यहाँ तो इन विषय के छोटे–छोटे सरल देशभाषा में गीत और छन्दों की आवश्यकता है जो पृथक् पुस्तकाकार मुद्रित होकर साधारण जनों में फैलाये जायेगें।''[9]

भारतेन्दु के उक्त विचारों से यह स्पष्ट हो जायेगा कि वे न केवल हिन्दी भाषा और काव्य के लिए बल्कि सारे देश की उन्नति के लिए लोक हितकारी साहित्य की सर्जना की आवश्यकता समझते थे। स्वयं उन्होने अपनी कविताओं में कम से कम आठ प्रमुख लोकगीत शैलियों का प्रयोग किया है। उनकी अपनी रची हुयी बत्तीस कजलियाँ है जो बनारसी पद्धति पर लिखी गयी हैं। ये कजलियाँ गायन भेद से स्त्रियों तथा पुरूषों द्वारा गायी जाने वाली दोनों प्रकार की हैं। इनकी कुछ कजलियाँ द्रश्य हैं–

प्यारी झूलन पधारो झुकि गयो बदरा।
ओढ़ी सुरूख चूनरि तापै श्याम चदरा ।।
देखो बिजुरी चमके बरसै अदरा।
'हरीचंद' तुम बिन पिय अति कदरा ।।[10]

भारतेन्दु ने सर्वप्रथम अपने नाटकों में गीतों की रचना की। ये गीत प्रमुखतया विद्यासुन्दर, वैदिकी हिंसा–हिंसा न भवति, मुद्राराक्षस, सत्य हरिश्चन्द्र, कर्पूरमंजरी, चन्द्रावली, भारतदुर्दशा, नीलदेवी, दुर्लभबन्धु, सतीप्रताप, भारत जननी नामक नाटकों में आयें हैं। परिस्थितियों को उभारने, भावुकता को जगाने, पात्रों की मनोवृत्तियों को स्पष्ट करने तथा संगीतात्मकता के सृजन के लिए इस

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i02.25

युग के नाटकों में पिरोये गये गीत अत्यन्त सफल हुए हैं। गीतिकाव्य की दृष्टि से प्रतापनारायण मिश्र की नाट्य कृति **'उषा हरण'** बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें लोकधुनों पर रचे गये कुछ गीत बड़े मार्मिक हैं। इतना ही नहीं चौथे अंक का **'धीवर गीत'** और पाँचवें अंक का **'कंचुकी गीत'** अपने समय में बड़े प्रसिद्ध हुए। इन गीतों में भक्तिकालीन पद शैली से भिन्न गीतों की स्वतन्त्र षैली है और इस शैली में लोकगीतों के ढंग पर भावाभिव्यं 'जना भारतेन्दु की निजी मौलिकता है। इन्हीं गीतों से गीतिकाव्य के क्षेत्र का काव्य रूप की दृष्टि से विकास आरम्भ होता है। इनकी गीति–सृष्टि में परम्परागत छन्दों के अतिरिक्त पदावलियों, लोकछन्दों तथा लोकधुनों पर आधारित गीत सम्मिलित हैं। क्या भाषा, क्या भाव और क्या काव्य पद्धतियाँ सभी दृष्टियों से भारतेन्दु युग समन्वय का काल था।

विषय के अनुसार भाषा और छन्द चुनना उनकी अपनी विशेषता है। जहाँ एक ओर उन्होंने उर्दू में गजलें लिखी वहीं दूसरी ओर संस्कृत के स्त्रोत भी मिलते हैं। बज भाषा के साथ नागरी हिन्दी के भी दर्शन होते हैं।[11]

जनवाणी को लोकगीतों में अत्यधिक प्रभावी ढंग से आबद्ध किया जा सकता है। दुर्भिक्ष के कारण जब जन–जीवन अस्त व्यस्त हो गया था, उस समय 'हिन्दी प्रदीप' में होली गीत के प्रवाह में प्रकाशित यह गीत जनता के मानसिक उद्वेगों को प्रतिच्छवि प्रदान करने में कितना समर्थ है–

डफ बाज्यौ भरत भिखारी को
केसर रंग गुलाल भूलि गयो, कोऊ पूछत नहिं पिचकारी को।
बिन धन अन्न लोग सब व्याकुल, भई कठिन विपत नर नारी को।
चहुंदिसी काल पर्‌यो भारत में, भय उपज्यो महामारी को।

लोककाव्य के रूप में कजली में भारत की व्यापक दरिद्रता, भूख और बेकारी की अभिव्यंजना अत्यधिक हृदयस्पर्शी रूप में चित्रित हुयी है।

घर में अनाज नाहीं, भूखन को साज नाहीं, कोऊ सिरताज नाहीं,
कपड़ा पुराना–कैसे खेलों कजरी।
सास की विसास नहीं, ससुर की आस नहीं, पंगति को त्राव नाहीं,
सैया विलखन–कैसे खेलों कजरी।
लोक में नियाब नाहीं, पंच में हियाब नाहीं, साधुता का भाज नाहीं,
अकिल हैरान–कैसे खेलों कजरी।
ब्राह्मन कपूत भैले, मूढ़ राजपूत भेले, भूप यमदूत भैले
रोवत किसान–कैसे खेलों कजरी।
छया गैली, मया गैली, दुनिया से दया गैली, रिवलकत सब नयी भैली,
स्वारथ भूला न–कैसे खेलों कजरी।
धन कहीं रहा नाहीं, अन्न हूँ जुरात नाहीं, खेतिया के छींगें
कहू लागे ना ठिकान–कैसे खेलों कजरी।[12]

भारतेन्दु कृत 'अंधेर नगरी' के गीत भी जनगीत शैली का प्रतिनिधित्व करते हैं–

चूरन साहेव लोग जो खाता, सारा हिन्द हजम कर जाता।
चूरन पुलिस वाले खाते, सब कानून हजम कर जाते।
ले चूरन का ढ़ेर, बेचा टके सेर।[13]

इस प्रकार स्पष्ट है कि भावभूमि की दृष्टि से भारतेन्दु युग के लेखक जन–साहित्य से पूर्णतः सम्बद्ध रहे।

लोकगीत के अतिरिक्त राष्ट्रभक्ति से सम्बद्ध ओजपूर्ण गीतों का भी अभाव इस युग में नहीं था। दुलारे कवि का **'अवध मां राना है मरदाना'** भारतेन्दु का '**वर्षाविनोद**', **'रोवहु सब मिलि के आवहु भाइ'**, और **'विजयिनी विजय पताका**' श्रीधर पाठक की **'हिन्द वन्दना'** आदि कई दृष्टियों से श्रेष्ठ है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भारतीय धन का विदेश चला जाना खलता है। महँगायी, अकाल और कर की आपत्ति हरिश्चन्द्र को भारत सरकार की कटु आलोचना करने को प्रेरित करती है–

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी;
पै धन विदेश चलि जात इहे अति ख्वारी।
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी';
दिन दिन दूने दुःख ईस देत हा हा री।
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई;
हा हा! भारत दुदर्शा न देखी जाई।[14]

अपनी विचारधारा को प्रस्तुत करने में जनभाषा को अपनाकर लेखकों ने जनोपयोगी साहित्य के स्वरूप को गौरवान्वित किया है। तुलसी और कबीर की भाँति भारतेन्दु ने जनभाषा का आग्रहपूर्ण प्रयोग किया है अतएव ''भारतेन्दु युग की सबसे बड़ी खूबी यह है कि वह जनता का साहित्य है। उनकी भाषा न दरबारों की है, न सरकारी अफसरों और कचहरी के मुहरिरों की! वह जनता की भाषा है, जिसमें अत्यधिक ग्राम–सम्पर्क के चिन्ह भले हों, नागरिक बनाव सिंगार और टीपटाप का अभाव है। है। उस पर अवधी और ब्रजभाषा की गहरी छाप है''[15]। भारतेन्दु ने पैदल बैलगाड़ी, रेलगाड़ी आदि पर भ्रमण कर देश की वास्तविक स्थिति एवं संस्कृति का अवलोकन किया था। अतएव उनकी भाषा क्षेत्रीय भाषा की विशिष्टताओं को ग्रहण करके सबल हो सकी है।

इस काल में तीन प्रकार की भाषा शैलियाँ मिलती हैं– (1) प्राचीन परम्परानुसार ब्रज भाषा (2) शुद्ध खड़ी बोली (3) खड़ी बोली तथा ब्रज भाषा का मिश्रित रूप। इस युग में ब्रजभाषा का विशेष प्रभाव था किन्तु खड़ी बोली कविता का भली–भाँति आरम्भ हो चुका था। खड़ी बोली के गीतों में ग्रीष्मवर्णन 'गर्मी के आगम दिखलाएं', 'रात लगी घटने', 'साँझ–सवेरे सब पक्षी क्या कहतें है', 'कुछ तेरा है', 'तुझ पर काल अचानक टूटेगा', 'डंका कूच का बज रहा मुसाफिर जागो रे 'भाई', 'मन्द– मन्द आवे देखो प्रात समीरन', 'फागुन के दिन बीत चले हैं अब ऋतु वसन्त आयी' और प्रतापनारायण मिश्र के शकुन्तला नाटक का गीत 'प्यारी ने पाया पिया मन भाया, क्या यही विधाता ने योग मिलाया' आदि उल्लेखनीय हैं।[16]

भाषा के साथ छन्दों की दृष्टि से भी भारतेन्दु युग का साहित्य जन साहित्य ही है। सामयिक कवियों नें जन–समूह की समस्याओं को काव्य रूप द्वारा अभिव्यंजना प्रदान की है, तभी तो

https://doi.org/10.31995/shodhmanthan.2025.v16i02.25

जन–चेतना अंग्रेजी सत्ता के प्रति व्यापक रूप से विरोधी हो गयी थी। इस युग में प्रबन्ध काव्य की सर्जना न हो सकी है। जो कुछ है वह मुक्तक रूप में ही है। पुराने छन्दों दोहा, चौपाई, रोला, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि की रचना रीतिकाल की भाँति ही होती रही। खड़ीबोली की क्रियाएँ कवित्त, सवैया आदि के ढ़ाँचे में बाधा देती थी, अतः उर्दू ढंग के छन्दों, लावनियों और ख्यालों का उपयोग शुरू हो गया। इसके अतिरिक्त आल्हा, ठुमरी, गजल, कजली, झूलना, रोला आदि छन्द अपनाकर कवियों ने अपनी प्रतिभा सम्पन्नता का परिचय दिया है।[17]

तत्कालीन लेखकों ने विदेशी वस्तुओं के प्रयोग का विरोध किया था। इस विरोध के स्वरूप को प्रस्तुत एवं इसी प्रकार अनेक लोक छन्दों में प्रभावी रूप में व्यंजित किया गया है–

मारकीन मखमल बिना चलते कछु नंहि काम।
परदेसी जुलहान के मांनहु मानहुं भये गुलाम ।।
वस्त्र कांच, कागज, कलम, चित्र खिलौने आदि।
आवत सब परदेस सों, नितहीं जहाजनि लादि ।।
इत की रूई, सींग अरू चरमाहिं, नित ले जाय।
ताहि स्वच्छ करि, वस्तु बहु भेजत इतहिं बनाय ।।
तिनहिं को हम पाइ के, साजत निज आमोद।
तिन बिन, छिन तष्न, सकल सुख, स्वाद विनोद प्रमोद।[18]

इस काल की कविता की मुख्य प्रवृन्ति देश भक्ति की है। विदेशी शासको के अत्याचारों से पीड़ित भारतीयों के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना का संचार करने का प्रयास भारतेन्दु युगीन कवियों ने किया। राधाचरण गोस्वामी की कविता 'उत्तम भारत देश' राधाकृष्ण की 'भारत बारहमासां बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन की कविता 'धन्य भारत सब रतननि की उपजानि इसी भावना से ओतप्रोत है। इसमें ब्रिटिश शासकों की गुलामी के साथ–साथ देश की दशा सुधारने की प्रार्थना भी है–

करहु आज सो राज आप केवल भारत हित,
केवल भारत के हित साधन में दीजिए चित।।

भारतेन्दुजी की निम्न पंक्तियों में अंग्रेजो द्वारा किये जा रहे शोषण का चित्र अंकित किया है–

भीतर–भीतर सब रस चूसे, हँसि हँसि के तन मन धन मूसे।
जाहिर वातन में अति तेज, क्यों सखि साजन नहीं अंग्रेज।।

भारतेन्दु जी ने अपने देश की उन्नति के मूल मे अपनी भाषा की उन्नति के मूल में अपनी भाषा की उन्नति को आवश्यक माना है–

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटतन हिय को सूल''।।

बदरी नारायण चौधरी प्रेमधन ने पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने वालो पर व्यंग्य करते हुए लिखा है–

चूसहु चुरूट लाख पर लागत पान बिना मुँह सून।

अच्छर चारि पढ़े अंग्रेजी नब गए, अफलातून।।

राधाचरण गोस्वामी ने भारत की दुदर्षा का चित्रण करते हुए लिखा है–

मैं हाय–हाय दे धाय पुकारों रोई।
भारत की डूबी नाव उबारो कोई।।

बाल विधवाओं की दुदर्शा पर प्रतापनारायण मिश्र ने लिखा है –

कौन करेजो नहिं कसकत सुनि बिपति बाल विधवन की।।

उपसंहार

इस प्रकार आधुनिक युग में कलागीतों के साथ लोकगीतों के समन्वय का विशेष प्रयास भारतेन्दु की रचनाओं में मिलता है। इस दृष्टि से भारतेन्दु के गीतों की राग–रागिनियों परम्परागत पदावलियों की राग–रागिनियो से सर्वथा भिन्न हैं। लोक हृदय की सरल स्वाभाविक आनन्द की अभिव्यक्ति जैसी भारतेन्दु के पदों में हुयी है, वैसी पूर्ववर्ती गीतकारों की रचनाओं में नहीं। 'अरे इन दोउन राह न पाइ' अथवा 'जगत से कैसा नाता रे' (कबीर) की सार्थकता या तो हिन्दू–मुस्लिम दंगों की शान्ति में है अथवा दो समाजों के समन्वय के प्रयत्न में। 'हे री मैं तो दरद दीवानी (मीरा) अथवा 'अखियाँ हरि दरसन की प्यासी' (सूर) की सार्थकता सुरुचिपूर्ण सहृदयता की सतह पर ही हो सकती है किन्तु यदि 'ब्रज के लता पता मोहिं कीजै' में एक साथ सूर और मीरा की झाँकी मिल जाती है तो 'चिरजीवो फागुन की रसिया' में एकवारगी लोकहृदय की उमंग छलक पड़ती है। इनमें न तो होली में गाये जाने वाली कवीर की अन्योक्तिपूर्ण दुर्बोधता अथवा जघन्य अश्लीलता है और न सूर की होली जैसी प्रकृति पुरूष की लीला की अभिव्यक्ति। इस प्रकार भारतेन्दु के पदों का एक ओर साहित्यिक महत्व है, तो दूसरी ओर लोकव्यापी प्रभाव। अतः उनमें यदि एक ओर सारंग, विहाग, असावरी, कान्हरा के द्वारा राग रागिनियों की शास्त्रीयता (क्रिटिसिज्म) है तो दूसरी ओर लावनी, पूर्वी, रेख्ता, खेमटा, होली, हिंडोला आदि की रूमानियत (रोमान्टिसिज्म)।[19]

इस प्रकार भारतेन्दु युगीन हिन्दी काव्य ने भाषा और विषय दोनों ही दृष्टि से हिन्दी कविता को नवीन मार्ग प्रदर्शित किया। कविता में जनजागरण के स्फूर्तिदायक भाव भरे और खड़ीबोली को ब्रजभाषा के समकक्ष लाकर खड़ा कर दिया। इस युग के साहित्य में प्राचीन परम्पराओं तथा नवीन काव्य शैलियों का सुन्दर समन्वय देखने को मिलता है।

सन्दर्भ

1. डॉ राम स्वरूप चतुवेदी : हिन्दी साहित्य व संवेदना का विकास
2. श्री प्रकाश शुक्लः सांठोत्तरी हिन्दी कविता मे लौक सौन्दर्य (लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद सन 2001 ई0) पृ० सं०–95
3. डॉ मंजु गुप्ता : आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प विधान (मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ दिल्ली 1974) पृ० सं०–092
4. हजारी प्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2000 पृ० सं०–210

5. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० सं०–72
6. विपिचन्द्र–भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली संस्करण 1997, पृ० सं०–46
7. रामविलास शर्मा – भारतेन्दुयुग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा, राजकमल प्रकाशन पृ० सं०–14
8. डॉ राम विलास शर्माः भारतेन्दुयुग (विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, चतुर्थ संस्करण 1963) पृ० सं०–4–5
9. मई 1879 के कवि वचन सुधा में प्रकाशित भारतेन्दु की विज्ञप्ति का अंश
10. ब्रज रत्न दास (स0) भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग–2 वर्षा विनोद, कजली, (ना.प्र.स.का.0स0 2010 वि0) पृ० सं०–487
11. डॉ केशरीनारायण शुक्ल, आधुनिक काव्य धारा, पृ० सं०–91
12. हिन्दी प्रदीप, भारत अगस्त 1888 ई0 पृ० सं०–11–12
13. रूद्र काशिकेय (स0) भारतेन्दु ग्रन्थावली (नाटक) अधंरेनगरी (ना.प्र.स.का.0स0 2027वि0) पृ० सं०–170
14. रूद्र काशिकेय (स0) भारतेन्दु ग्रन्थावली (नाटक) भारत दुदर्शा (ना.प्र.स.का.0स0 2027वि0) पृ० सं०–134
15. डॉ राम विलास शर्मा भारतेन्दुयुग (विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, चतुर्थ संस्करण 1963) पृ० सं०–153
16. डॉ आशा किशोर, आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास (विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1971) पृ० सं०–21
17. डॉ कृष्ण मोहन सक्सेना : भारतेन्दुयुगीन नाट्य साहित्य में लोकतत्व (अभिनव भारती, इलाहाबाद 1977) पृ० सं०–6
18. डॉ कृष्ण मोहन सक्सेना : भारतेन्दुयुगीन नाटय साहित्य में लोकतत्व (अभिनव भारती, इलाहाबाद 1977) पृ० सं०–7
19. डॉ आशा किशोर : आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप और विकास (विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी 1971) पृ० सं०–22